"जल संसाधन के क्षेत्र में भावी चुनौतियाँ"
विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी
16-17 दिसम्बर, 2003, रुड़की (उत्तरांचल)

बाढ़ एवं सूखा प्रबन्धन

सुबह सिंह यादव
राज्य स्तरीय बैकर्स समिति, जयपुर

सारांश

भारत एक कृषि प्रधान देश होने के कारण, हमारी अर्थव्यवस्था काफी सीमा तक मानसून के मिजाज पर निर्भर करती है। वर्षा होती है तो कहीं बहुत अधिक, कहीं मूसलाधार तो कहीं रिमझिम अर्थात् सब जगह समान रूप से नहीं होती है, तो कहीं दूसरी ओर अकाल छाया। बाढ़ के समय उत्पादन के साधन तुरन्त नष्ट हो जाते है, तो दूसरी ओर अकाल पड़ने के दौरान इनमें से बहुत से साधन निष्क्रिय रहते हैं। दोनों ही स्थितियों में उत्पादन का नुकसान होता है तथा दोनों ही अकथनीय तकलीफों को लेकर आते है जहाँ एक ओर प्रकृति को इन दोनों पराकाष्ठा वाली गतिविधियों पर काबू पाना एक मुश्किल कार्य है, (यदि असंभव नहीं तो) वहीं दूसरी ओर इन प्राकृतिक विपदाओं से पीड़ितों को राहत प्रदान करना तो संभव है ही। बैंकों को इन राहत कार्यों में भाग लेना ही है, विशेषकर जहां कहीं भी साख की आवश्यकता हो उसे प्रदान करने।

1. बाढ़ के बाद राहत कार्य :

प्राय: बाढ़ अचानक आती हैं तथा आदमी, पशु, घरों आदि को दनादन रूप से बहाकर अपने साथ ले जाती है और ऐसा लगता है सभी कुछ पानी के अन्दर दफन हो गया है। जब पानी का उतरना आरंभ होता है तो विनाशलीला के अतिरिक्त हैजा (Cholera) जैसे छूत की बीमारी (Epidemies) फैल जाती है। बाढ़ के दौरान प्रभावित क्षेत्र बाहरी दुनियां से अलग थलग पड़ जाता है और राहत कार्य उसी स्थिति में संभव है जब पानी का ज्वार वापिस बह जाता है। लेकिन यदि बाढ़ की स्थिति का पहले से ही कुछ संकेत मिल जाये तो कम से कम लोगों को तथा पशुधन को सुरक्षित स्थानों पर ले जाया जा सकता है एक बार जब सामान्य स्थिति बहाल हो जाती है तो सरकारों विभागों तथा सामाजिक संगठनों द्वारा मिलकर दिन रात राहत कार्यों में तीव्रता लायी जा सकती है। बाढ़ग्रस्त इलाकों में प्राय: प्रत्येक गतिविधि को शून्य से आरंभ करनी होती है। यदि खेत में खड़ी हुई फसलें नष्ट हो गयी हैं तो उन्हें काटना पड़ता है। यदि घर बाढ़ में बह गये हैं तो उन्हे दोबारा बनाना पड़ेगा तथा फैक्टरी एवं दुकानों को पुन: आरंभ करना पड़ेगा।

यदि बाढ़ बीमा की व्यवस्था है तो बीमा दावे प्राप्त हो जायेगें और उसके बाद किसी भी उत्पादक कार्य के लिये बैंक से उस स्थान पर वित्तीय सहायता प्राप्त की जाती है। यदि वहां पर ऐसी कोई केन्द्रीकृत एजेंसी है जो प्रस्तावों को प्रायोजित करती है, जैसे तालुका विकास कार्यालय का जिला औद्योगिक केन्द्र, तो ऐसी एजेंसियां ही विद्यमान बैंक के विद्यमान उधारकर्ताओं को प्रायोजित करती है। यदि उधारकर्ता नये हैं तो, उनके आसपास में स्थिति पसंद किया जायेगा। सामान्यत: विद्यमान ऋणों को यदि ऋण वितरण तथा वितरितऋण से आमदनी प्राप्त होने के मध्य की अवधि स्वीकृत कर किस्तों में बंद किया जाता है, यदि ब्याज देय है तो वह भी चुकाया जाता है। साख की नयी रेखा को, विशेषकर पुनर्वास ऋणों को ब्याज की निम्न दर पर कम ब्याज दर पर चुकाया जाता है। कई बार राज्य सरकारें बैंकों को सीधे ही ब्याज सब्सिडी प्रदान करती है।

बाढ़ के बाद पुनर्वास गतिविधियों का वित्त पोषण करना इसलिये कठिन नहीं है क्योंकि अधिकांश वित्त आर्थिक क्रियाओं को नये सिरे से चालू करने एवं निर्माण के लिये मांगा जाता है, लेकिन यदि सूखा पड़ता है तो कई तरह की समस्याएं उत्पन्न होती है। अत: हम अब सूखा के समयराहत कार्यो में बैंकों की भूमिका वर्णन करेंगे।

2. सूखे के समय प्रबन्धन :

सूखे के समय जल के अभाव में कृषि गतिविधियां स्थगित रहती है तथा कृषि आधारित उद्योगों में ठहराव सा आ जाता है। यदि वर्षा क्षीण है अथवा है ही नहीं, तो यहां तक कि पीने के पानी की कमी भी रहती है। ऐसी स्थिति में वित्त की कमी या तो नये कुएं खोदने के लिये अथवा विद्यमान कुओं को गहरा करने के लिये की जाती है। जहां कही भी संभव हो फसलों को उगाया जाता है और रेशे वाली फसलें उगाना सम्भव नहीं है, वहां चारा प्रदान करने वाली फसलों को उगाने के लिये प्रोत्साहन दिया जाता है।

यदि कृषि क्रिया कलाप बिल्कुल भी संभव नहीं है तो उस स्थान विशेष की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये औद्योगिक, व्यापार तथा सेवा क्षेत्र में दूसरी गतिविधियों का सुझाव दिया जा सकता है तथा उन्हें बैंक द्वारा साख प्रदान की जा सकती है। साथ ही उपलब्ध स्थानीय कच्चे माल तथा कौशल का प्रयोग करते हुये कुटीर उद्योग लगाने होंगे। हथकरधा, अम्बर चरखा, हीरा काटने वाली क्रिया, हस्तशिल्प तथा कसीदाकारी, चप्पल और जूते बनाना अथवा गारमेंट बनाना ये कुछ ऐसी गतिविधियां हैं जो सूखे के समय परिचालित की जा सकती है। प्रत्येक गांव में बैंक द्वारा वित्त पोषित एक दुकान हो सकती है ताकि गांव वालों को खाद्यान्नों की निर्विघ्न आपूर्ति मिल सके। यदि भूजल उपलब्ध है तो स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना के लाभार्थियों की सहकारी समिति बनाना एवं सामुदायिक कुआं बनाना उपयुक्त होगा ताकि सभी को इसका लाभ मिल सके। सूखे जैसे कठिन समय में बैंकर्स द्वारा की गई इस तरह की सेवा का हमेशा के लिये याद रखा जायेगा।

यदि सूखा प्रभावित क्षेत्र में सरकार कोई राहत कार्य आरंभ नही कर पा रही तो बैंक अनेक गतिविधियों का सुझाव देते हैं तथा प्रोत्साहित करते हैं, जैसे बांधों का निर्माण, सड़कों को चौड़ा करना, जल तालाबों अथवा नहरों को गहरा करना इत्यादि। सूखे से प्रभावित क्षेत्रों में लोग भी राहत कैम्पों में काम करना पसंद करते है ताकि वे अपनी मजदूरी तुरन्त ही आंशिक रूप से नगदी में तथा आंशिक रूप से जिंसो में प्राप्त करते हैं। सामान्यत: यह देखा गया है कि वे बैंक वित्त की सहायता से अपनी स्वयं का क्रियाकलाप आरंभ कर देते हैं। लेकिन सूखे के कारण वस्तुओं का विपणन कार्य कठिन हो जाता है। इसलिये जब तक स्थानीय मांग नहीं हो और बिक्री आश्वस्त नहीं हो तब तक ये क्रियाएं बहुत अधिक प्रतिबंधित रहती है।

यही नहीं सूखे के वर्षो में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रो में कुछ अन्य समस्याओं को भी जन्म दिया। सूखा पीड़ित ग्रामीण जनसंख्या कुछ अन्य स्थानों पर जाने लगी। साथ में जानवरों को भी लेकर चले। ये जानवर गैर-सूखाग्रस्त क्षेत्रों में फसलों की क्षति करते है इस कारण से कहीं-कहीं कानून एवं व्यवस्था की समस्याएँ उत्पन्न हुई। अन्य स्थिति में भी कुछ लोग बेरोजगार है। और जिन्हें भोजन नहीं मिलता है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में सामाजिक एवं प्रशासनिक समस्याएं उत्पन्न करते हैं।

3. सूखे का अर्थ एवं इसकी श्रेणियां :

भारतीय सन्दर्भ में सूखे वर्षो को चार प्रकार की श्रेणियों में रखा गया है :

3.1 अल्पसूखा :

30 प्रतिशत से कम क्षेत्रफल सूखे से प्रभावित होने पर सूखा वर्ष को अल्पसूखा की श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है।

3.2 सामान्य सूखा :

30-40 प्रतिशत क्षेत्रफल सूखे की चपेट में आने पर इसे साधारण सूखा की श्रेणी की संज्ञा दी जाती है।

3.3 भयंकर सूखा :

40 से 50 प्रतिशत के मध्य प्रभावित क्षेत्र होने पर भयंकर सूखा होता है।

3.4 अति गंभीर :

(आपदा वर्ष) 60 प्रतिशत तथा इससे अधिक क्षेत्रफल पर जब सूखे की मार होती है। तो इसे अति गंभीर अथवा विपदा वर्ष कहा जाता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि भयंकर सूखा तथा अति गंभीर तथा अति गंभीर सूखा की उपर्युक्त परिभाषाएं पूर्ण नहीं है। कहीं-कहीं साहित्य में इन्हें पर्यायवाची शब्दों के रूप में भी प्रयुक्त किया गया है। लेकिन हमें इनके साहित्यिक एवं शाब्दिक पर न जाकर इसका व्यवहारिक अर्थ समझना चाहिये। भयंकर सूखा अधिक हानि का सूचक है और अति गंभीर सूखा और भी अधिक दुष्परिणाम का संकेत देता है। इसलिये अति गंभीर सूखा भयंकर सूखा की अपेक्षा (तुलना में) अधिक हानि की ओर संकेत देता है। इन दोनों स्थितियों के लिये राहत कार्य और सरकार की ओर से कई प्रकार के कदमों की आवश्यकता है।

4. सूखे के आंकलन की पद्धति :

सूखे, बाढ़ आदि के कारण होने वाली फसल की हानि का पता लगाने के लिये सरकार की एक सुनिश्चित पद्धति है यह राज्य सरकारों के राजस्व विभाग के माध्यम से मापी जाती है। मैट्रिक प्रणाली आरंभ होने से पहले एक रूपये में 16 आने होते थे अर्थात् इस अर्थ में एक आना फसल मूल्य का सोलहवाँ (1/16) भाग है। इस प्रकार यह फसल को होने वाली क्षति के निर्धारण का तरीका है तथा राहत एवं क्षतिपूर्ति जिलाधीश द्वारा घोषित 'अन्नवारी' के आधार पर किसानों को दी जाती है। प्राय: यह पद्धति देश भर में एक समान है, लेकिन कुछ राज्यों में मामूली अन्तर हो सकता है। उदाहरण के लिये यह पैसेवारी के रूप में मापी जाती है। किसी विशेष क्षेत्र में घोषित अन्नवारी के आधार पर तकावी ऋण, अनुदान और आर्थिक सहायता के लिये निर्णय लिया जाता है। यहां तक कि बैंको का यह निर्णय कि फसल ऋणों को परिवर्तित करना या वर्तमान सावधि ऋणों की अवधि को पुन: निर्धारित करना भी अन्नवार की घोषणा के आधार पर ही किये जाते है। इसलिये सूखे, बाढ़ तूफान आदि के समय अन्नवारी का अधिक महत्व होता है।

5. उपभोग ऋण (Consumption Loan) :

बैंक तथा सरकार के सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद भी कुछ ऐसी जगह हैं जहां पर न तो आर्थिक क्रियाएं ही और न ही राहत कार्य ही संभव है। ऐसे मामलों में लोगों को जीवित रखने के लिये, विशेषकर ऐसे भूमि विहीन श्रमिकों की जीवन निर्वाह आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये जो बिना किसी नौकरी अथवा वैकल्पिक कार्य के लिये आवश्यक कौशल के बिना खेतों पर काम करते हैं, उन्हें उदारतापूर्ण उपभोग ऋण स्वीकृत करने होंगे। इस ऋण से इन्हें खाद्यान्नों को खरीदने तथा दूसरी छोटी मोटी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायता मिलेगी। ऐसे समय में बैकों को फुर्ती से तथा सेवा भावना से काम करना चाहिये तथा लोगों के बैंक में आने तथा ऋण मांगने का इन्तजार किये बिना ही बैंक वालों को बाहर आकर ऐसे प्रकृति की मार से पीड़ित लोगों की पहचान कर उन्हें सहायता देने का श्रम करना होगा। यद्यपि यह सच है कि उपभोग ऋण की मात्र रू 1000/- तक बंधित है, फिर भी इससे लोगों को तत्काल सहायता मिल जाती है।

6. पशुधन कैम्प (Cattle Camp) :

सूखाग्रस्त क्षेत्रों में जो लोग चारा आदि खरीदने की स्थिति में नहीं है तथा इन पशुओं को अपने पास रखने में असमर्थ हैं, वे उन्हें स्वैच्छिक रूप से चलाये जाने वाले पशु कैम्पों में भेज देगें और इस प्रक्रिया में पशुओं का कैम्पों में मुक्त भाव से दान कर दिया जाता है। यहाँ पर न केवल मालिक अपने पशुओं को खो देता है, अपितु बैंक भी अपनी प्रतिभूति को सदा के लिये खो देता है क्योंकि कैम्पों के आयोजक अथवा मालिक उन पशुओं को अपने पास रखेंगे। जब सामान्य स्थिति बहाल हो जाती है पशुओं को बाजार में बेच दिया जायेगा। आश्चर्य की बात यह है कि यदि यह पशु जीवित है तो पशु के स्वामी को भी उसे एक कीमत देकर ही खरीदना पड़ेगा। बैंकों को भी इस तरह की द्वितीय खरीद के लिये वित्त देना पड़ेगा। यदि पहला ऋण पहले से ही बकाया है, तो शायद दोनों ऋणों को समेकित किया जा सकता है, लेकिन प्रतिभूति के घटते हुये मूल्य पर समेकन होगा तथा पुन: निर्धारण किस्तों में चुकता किया जा सकता है। यहाँ तक कि यदि पशु मर गया है तो हो सकता है पशु बीमा भी उपलब्ध नहीं हो क्योंकि वर्तमान प्रावधानों से पता चलता है कि पशु की मृत्यु के बारे में रिपोर्ट देनी होगी तथा इसके साथ पशु चिकित्सक का एक प्रमाण-पत्र भी होना चाहिए। दूर दराज स्थानों पर लगने वाले केम्प में ऐसा करने की आवश्यकता अथवा प्रावधान नहीं है।

7. पुन: निर्धारण (Rephasement) :

प्राकृतिक विपदाओं के दौरान अथवा इसके बाद बैंकों को ब्याज अथवा किस्तों के माध्यम से चुकौती की आशा नहीं करते। लेकिन ब्याज अथवा किस्तों को बकाया रूप में रखने की अनुमति देने का अर्थ होगा बैंक के व्यापार स्टाक में अनियमित, खराब तथा संदिग्ध ऋणों को रखना। अत: स्वाभाविक रूप से प्रत्येक ऋण का पुन: निर्धारण करना होगा। इस सबके लिये उधारकर्ताओं की ओर औपचारिक निवेदन आना चाहिये तथा कुछ दस्तावेजों का भी निष्पादन करना होगा। व्यापक स्तर पर किये जाने वाले ऋण, पुन: निर्धारण के लिये वर्तमान में राज्य सरकार को अधिकारिक रूप से (गजट नोटिफिकेशन के माध्यम से) जिला/तहसील इत्यादि को सूखाग्रस्त घोषित करता है जिसमें राहत कार्यों के जारी रहने ऋणदाता से सम्पर्क करना तथा उससे आवेदन प्राप्त करने में बहुत समय लगता है। इसमें दूसरी कठिनाई यह है कि बहुत सारे ऋणी राहत कार्य करने के लिये सुबह ही कार्य-स्थलों पर चले जाते हैं तथा शाम को देर से अपने घर लौटते हैं। इस प्रकार बैंकर्स इन ऋणियों से बैंकिंग घंटों के बाद ही मिल सकते हैं। यहाँ तक कि इस उद्देश्य के लिये बैंकर अपने गैर जन व्यवसाय दिवसों (Non Public Business Days) का भी उपयोग नहीं कर सकते। इसलिए प्रत्येक शाखा में स्वैच्छिक रिलीफ स्कवैड (Relief Squads) बनाने आवश्यक है। जिसमें ऐसे लोग शामिल किये जाये जो निस्वार्थ सेवा कर सकें। ऐसे कई उदाहरण हैं जहाँ ग्रामीण शाखा प्रबन्धकों ने दस्तावेजों के निष्पादन तथा अन्य वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु, वैयक्तिक उधारकर्ताओं को दिन में उनके राहत कार्य स्थलों पर मिलने अथवा रात में उनके घरों में मिलने में कोई कसर नहीं रखी।

8. सूखे के बाद (After Drought) :

पर्याप्त वर्षा के बाद, सामान्य: क्रियाकलापों की बहाली हो जाती है तथा कृषि क्षेत्र में बीज, खाद तथा अन्य इन्पुट खरीदने के लिये जो कार्यकर्ताओं को ऋण प्रदान करना होता है। यह सब सामान्य वर्षो को भांति ग्रामीण बैंकिंग का एक भाग ही होगा। लेकिन ऋणी को यह समझ में आ जाना चाहिये कि चालू परिचालन से, विगत की बकाया राशि को भी चुकाना पड़ेगा। शायद ऐसे एक या दो साख कैम्पों को आयोजित करना होगा जहाँ वरिष्ठ बैंकरों तथा निवास स्थलों के वरिष्ठ नागरिकों को उधारकर्ताओं को यह बताना होगा कि पुराने बकाया ऋणों को भी चुकाना है। बैंक दानदाता संगठन नहीं है। अन्य किसी वाणिज्यिक संस्थान की भांति, विपदाओं के समय उनकी तरलता तथा लाभप्रदत्ता को भी नुकसान पहुंचता है क्योंकि उन्हें किस्तों तथा ब्याज का पुन: निर्धारण करना होता है। यहाँ पर दो बातों पर विशेष ध्यान देना होगा :

(1) जब किस्तों का पुन: निर्धारण किया जाता है तो क्या बैंकों को तरलता बनाये रखने के लिये पुनर्वित स्वीकृत किया जा सकता है तथा

(2) बहियों में प्रविष्टियों के द्वारा ब्याज नहीं लगाया जाना चाहिये तथा कालोनी में सामान्य स्थिति बहाल होने तक इसे आय नहीं माना जाना चाहिए।

किसी भी निवास स्थान की अर्थव्यवस्था जो प्राकृतिक विपदाओं से ध्वस्त हो गई है को उसी तरह से पुन: जीवित करना चाहिये जैसे कि किसी औद्योगिक इकाई का पुनर्वास किया जाता है। पुनर्जीवन की प्रक्रिया तथा इसके लिये किये गये प्रयास व्यापक स्तर पर होने चाहिये। इसके अतिरिक्त बहुत सी एजेंसियों तथा सरकारी निकायों को इस कार्य में तहे दिल से भागीदार होना चाहिये।

9. सूखे का प्रभाव :

9.1 उत्पादन पर प्रभाव :

भारतीय कृषि काफी सीमा तक मानसून का जुआ होने के कारण मौसम में बदलाव के कारण कृषि उत्पादन में अच्चावचन आते रहते हैं। यदि किसी क्षेत्र में कृषि सिंचाई पर अधिक निर्भर रहती है, तो वर्षा में होने वाले विलम्ब से कृषि उत्पादन में काफी मात्रा में कमी आ सकती है क्योंकि इसे सूखे की स्थिति का सामना करना पड़ेगा । दूसरी ओर जैसा कि अध्याय के आरंभ में बताया गया है कि सामान्य से अधिक वर्षा की स्थिति में बाढ़ आ जाती है जिससे कृषि उत्पादन में कमी आने के साथ-साथ बीमारियों का प्रकोप आदि समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है भारत में कुछ राज्यों में तो नियमित रूप से सूखा पड़ता है तथा कुछ अन्य राज्यों में बाढ़ आती है। इन पांच दशकों में प्राकृतिक विपत्तियों ने कृषि उत्पादन को निम्न प्रकार प्रभावित किया है।

(1) जहाँ किसानों को इस आशा पर की वर्षा शीघ्र आयेगी, अपने सिंचाई साधनों (जैसे ट्यूबवैल, पम्पसैट आदि) से बुवाई आरंभ की, उसके बाद वर्षा के न आने से उन्हें या तो फसल को छोड़ना पड़ा अथवा खराब उत्पादन की स्थिति देखनी पड़ी।

(2) कृषक द्वारा जुटाये गये सिंचाई उपकरण खेती के लिये, विशेषकर धान की खेती के लिये अपर्याप्त थे।

(3) चारे की बुवाई नहीं हुई तथा वर्षा के कारण जंगलों, चारागाहों आदि में प्राकृतिक रूप से उगने वाली घास आदि का अभाव उत्पन्न होने से किसानों को बाध्य होकर अपने पशुओं को बेचना पड़ा। कुछ किसानों ने तो पशुओं को ऐसे ही आवारा छोड़ दिया जिससे कई प्रकार की समस्याऐं उत्पन्न हुई।

(4) नर्सरियों में पौध अनुपयुक्त हो गई और धान के प्रत्यारोपण में इनका उपयोग नहीं किया जा सका।

(5) कृषि मजदूरों को, जो सामान्यत: धान के प्रत्यारोपण और निराई के लिये अधिक वेतन पाता है, को मजदूरी नहीं मिली और जीवन निर्वाह के लिये वेतन पर निर्भर परिवारों को खाद्यान्नों की कमी का सामना करना पड़ा। मानसून के आने में हुये विलम्ब के कारण भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई। वर्ष 1987, 2000, 2002 में अभुतंपूर्व सूखे के कारण किसानों को असहय पीड़ा हुई।

(6) धान की खेती का प्रत्यारोपण नही हो सका तथा काफी बड़ी संख्या में कृषि जोतें बेकार पड़ी रही।

(7) इन स्थितियों में तोरिया जैसी वैकल्पिक फसलों का सुझाव दिया गया, लेकिन तोरिया के बीज न तो सरकारी स्टोर में और न ही बाजार में उपलब्ध थे। ऐसी स्थिति में यह एक काल्पनिक स्थिति ही बनकर रह गई।

9.2 आय के स्तर पर प्रभाव (Effect on Income Level) :

सूखे के समय कृषक फसल योजना के अनुसार खेती नहीं कर पाते, विशेषकर धान जैसी वाणिज्यिक फसल/नगद फसल का उत्पादन नही कर पाते। जहाँ खेती की भी गई वहाँ उत्पादकता का स्तर बहुत कम रहा और इस प्रकार किसानों की आय में काफी कमी हुई। वर्षा के मौसम में ज्वार, बाजरा, मकई, रागी आदि की खेती उन किसानो द्वारा की जाती है जिन्हें सिंचाई की सुविधाएँ प्राप्त नहीं होती लेकिन इन पौधों के आवश्यक उत्पादन के लिये मौसम में मिट्टी की न्यूनतम नमी का होना जरूरी है, जो प्राय: वर्षा के पानी से ही प्राप्त होती है शायद इसी कारण न केवल धान के उत्पादकों की आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, अपितु अन्य फसलों के उत्पादको को भी न्यूनाधिक मात्रा में अपनी आय में भी कमी का अनुभव हुआ।

9.3 ऋण का बढ़ता भार (Increasing Incidence of Debt) :

किसानों के अपने ऋणों को चुकाने में चूक की समस्या का साामना करना पड़ा। 1987 में धान एवं अन्य फसलों के लिये ऋण लेने वाले,ऋण की राशि का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रयोग नहीं कर सके इसके अतिरिक्त खरीफ फसल में हानि के कारण किसानों की ऋण को चुकाने की क्षमता में कमी आयी । इस प्रकार कृषि क्षेत्र पर ऋण का संचयी भार बढ़ता ही गया।

9.4 कृषि श्रमिकों की बेरोजगारी (Unemployment Amongst Agricultural Labourer) :

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया कृषि श्रमिक रोजगार प्राप्त करने के लिये कृषि कार्यो पर ही निर्भर रहते है। वर्षा न होने वाले वर्ष में कृषि श्रमिकों को अत्यधिक हानि हुई क्योंकि ऐसी स्थिति में ये परिवार के सदस्यों के लिये दो समय का खाना जुटाने में भी असमर्थ रहे। काफी श्रमिकों को शहरी क्षेत्रों की ओर निष्क्रमण करना पड़ा जिससे शहरों में गंदी बस्तियों की

समस्याओं ने जन्म लिया। दूसरी और भू स्वामियों को भी समस्याएँ हुई। सीमांत किसान श्रेणी के परिवार जो उस गांव में अथवा नजदीकी गांवों के खेतों में काम करते थे, को भी 1987, 2000 तथा 2002 के भीषण अकाल वाले वर्षों में रोजगार के मामलों में उसी प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा जो भूमिहीन लोगों के मामले में थी।

9.5 गाय/बैल/अन्य जानवरों की हानि (Loss of Cow/Bullock/Other Cattle) :

चारे की उपलब्धता के अभाव में किसान अपने पशुधन को कौड़ियों के भाव बेच देते हैं। क्योंकि ऐसे समय में पशुओं के क्रेता भी बहुत कम होते है क्योंकि चारे की समस्या उनके सन्दर्भ में भी लागू होती है इसलिये मांग व आपूर्ति का नियम जहाँ सशक्त रूप से क्रियाशील होता है और कृषि जानवर अधिक सस्ते में बिक जाते हैं।

10. प्राकृतिक विपदाएं तथा उपभोक्ता वर्ग :

प्राकृतिक विपदाओं, विशेषक सूखे सहित कृषि क्षेत्र में कृषि की सहायक गतिविधियों में प्राकृतिक विपदाओं से उपभोक्ता काफी अधिक प्रतिकूल रूप से प्रभावित होते है। क्योंकि कृषि जींसों के भाव में भारी वृद्धि होती है। सामान्यत: मासिक व्यय का अधिकांश भाग केवल योजना आदि पर ही खर्च होता है, अत: उपभोक्ताओं को (चाहे वे औद्योगिक क्षेत्र के हों अथवा ग्रमीण क्षेत्र के) को तीक्ष्ण समस्याओं का सामना करना होता है। इसका एक बुनियादी कारण यह है कि सूखे और इसके अगले वर्ष मूल्य में अधिक वृद्धि होती है। 1007 मिलीमीटर वार्षिक वर्षा होने वाले सभी वर्षो के मामले में यह वास्तविकता है। इसका एक मात्र अपवाद 1968 का वर्ष है, जब खाद्यान्न में कमी की पूर्ति आयात से की गई।

10.1 प्राकृतिक विपदाओं का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव (Natural Calamities & Economy) :

ऐतिहासिक तौर पर भारत ने 1876 से लेकर 2002 में सामान्य सूखे में अति गंभीर तक का सामना किया है। इन स्थितियों को प्राय: चार भागों में बांटा जा सकता है जिसका विवरण चयनित वर्ष के आधार पर नीचे दिया गया है।

वर्ष	सूखे की श्रेणी	वर्ष	सूखे की श्रेणी
1876	अल्प सुखा	1925 एवं 1928	अल्प
1877	अति गंभीर	1941 एवं 1951	सामान्य
1833	सामान्य	1965 एवं 1966	सामान्य
1844	अल्प	1969 एवं 1971	अल्प
1891	सामान्य	1974 एवं 1979	सामान्य
1896	अल्प	1982 एवं 1985	सामान्य
1899	अति गंभीर	1986	अल्प
1907	अल्प	1987	गंभीर
1918	अति गंभीर	2000	गंभीर
1920	सामान्य	2002	अति गंभीर

पांचवे एवं छटे दशक में जिस समय भारत में सिंचाई की लघु परियोजनाओं का विकास नहीं हुआ था।, सूखे की स्थिति भारतीय अर्थव्यवस्था में गंभीर समस्याएं उत्पन्न किया करती थीं। 1951 में जब हमने पंचवर्षीय योजना की आधारशिला रखी ही थी, उस समय हमें 4.8 मिलियन टन खाद्यान्न का आयात करना पड़ा । खाद्यान्नों के आयात पर हमारी निर्भरता दो दशकों तक अर्थव्यवस्था की प्राय: एक स्थायी बात हो गई थी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में औद्योगीकरण पर ध्यान संकेन्द्रित करने तथा कृषि पर अपेक्षित ध्यान न दिये जाने से 1957 के वर्ष में ही हमें 3.6 मिलियन टन खाद्यान्नों के आयात के लिये बाह्य होना पड़ा। यही नहीं छठे दशक में हमारी स्थिति और खराब निकली क्योंकि इसमें आयात और अधिक मात्रा में किये गये। 1965 और 1966 के सूखों के कारण अधिक मात्रा में खाद्यान्नों का आयात करना पड़ा। 1965 का वर्ष तो भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे घातक वर्ष था एक ओर हमें पाकिस्तान से युद्ध करना पड़ा दूसरी ओर प्राकृतिक संकट उपस्थिति हुये। उत्तरी पश्चिमी राज्यों में सूखा पड़ा तो पूर्वी राज्यों में बाढ़ आयी (इसमें उत्तरी भारत का बिहार राज्य भी शामिल है) इससे देश की अर्थव्यवस्था में सुरक्षा तथा विकास के मध्य संतुलन की समस्या उत्पन्न हो गई। 1965 में 7.4 मिलियन टन तथा 1966 में 10.3 मिलियन टन खाद्यान्नों का आयात हुआ। इसके बाद भारत सरकार ने नवीन कृषि व्यूह रचना, जो अनन्त: हरित क्रान्ति के रूप में परिणित हुई, के माध्यम से काफी सीमा तक हमें राहत मिली लेकिन 1974 में पड़े सूखे के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था को एक बार फिर धक्का लगा परिणाम स्वरूप हमें 1974 में 5.2 मिलियन टन तथा 1975 में 7.5 मिलियन टन खाद्यानों का आयात करना पड़ा।

11. राहत कार्य (Relief Work) :

प्राकृतिक विपदाओं से प्रभावित परिवारों की उपभोग आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता से लेकर उनके प्रमुख कार्य कलापों को उचित स्थिति में लाने तक की श्रृंखला में अनेक कार्य सम्मिलित हैं। यह प्राकृतिक विपदा की सघनता पर निर्भरता करता है कि किस तरह का राहत कार्य आरम्भ किया जाये। यदि कोई क्षेत्र बाढ़ से पीड़ित है तो परिवार को उस स्थान से हटाने के लिए राहत कार्य, बच्चों को स्कूल भेजने की व्यवस्था, प्रभावित लोगों को चिकित्सा व्यवस्थायें, प्रभावित परिवारों और उनके पशुधन के लिये सुरक्षित स्थान की सुरक्षा आदि को यथाशीघ्र आयोजित करना होता है।

12. फसल ऋणों के मियादी ऋणों में परिवर्तित करना तथा मियादी ऋणों की अवधि को पुन: निर्धारित करना (Conversion of Crop Loan into Medium Term Loan & Reschedulment of Term Loan) :

अल्पावधि मियादि ऋण/फसल ऋणों को परिवर्तित करने में और मियादी ऋणों पर देयता की चुकौती में पुन:निर्धारित करने में संचित देयता को स्थगित करना शामिल है। लेकिन यदि किसी क्षेत्र में किसानों को क्षति देने वाले सूखे अथवा किसी अन्य घटना के होने पर यह अधिक वांछनीय और आवश्यक होता है। यह अन्नवारी के आधार किया जाता है। अनेक राज्यों में जब फसल मूल्य आठ आने से कम है बैंक फसल ऋणों को परिवर्तित करने तथा मियादी ऋणों की अवधि को पुनर्निधारण की अनुमति दे देते हैं। महाराष्ट्र में जहां क्षति का नुकसान 'आनो' की

अपेक्षा पैसों में करते है वहां यदि पैसेवारी 60 पैसे या उससे कम है तो ऋणों का परिवर्तन अथवा पुन: निर्धारण होता है। बैंकों ने ऋणों को परिवर्तित करने के लिये योजनायें बनायी हैं। कुछ बैंकं ने फसल ऋणों को मियादों ऋणों में परिवर्तित किया है जो तीन वर्षो में देय है इसी प्रकार सूखे की स्थिति में, मियादी ऋण की किस्त या सम्पूर्ण मियादी ऋण का पुन: निर्धारण किया जाता है और पुन: निर्धारित की तुलना में लम्बी अवधि में देय बनाया जाता है। सूखा अथवा प्राकृतिक विपदा से प्रभावित वर्ष में फसल ऋण का मियादी ऋणों में परिवर्तन और मियादी ऋणों का पुन: निर्धारण किसानों के लिये अधिक सहायक होता है इस संबंध में कुछ अन्य विशेष बातें इस प्रकार है।

(1) अल्पकालीन उत्पादन ऋणों का परिवर्तन (Conversion) बैंकों द्वारा प्राकृतिक विपदाग्रस्त किसानों को फसल ऋण स्वीकृत करते समय करना चाहिये। इसके लिये देय तिथियों का इन्तजार नहीं किया जाना चाहिये।

(2) जिस वर्ष प्राकृतिक विपदा आती है, उस वर्ष में देय अल्पावधि ऋणों को मियादी ऋणों में परिवर्तित कर दिया जाये।

(3) बैंक नये आवेदकों से भी आवेदन पत्र स्वीकार कर सकते हैं तथा उनकी कृषि एवं पशुधन के दाने की आवश्यकताओं के लिये वित्त प्रदान कर सकते हैं।

13. सूखा राहत कार्यों के क्रियान्वयन एवं मॉनिटरिंग में विभिन्न एजेंसियों की भूमिका :

विकासगत कार्यक्रमों की उपयुक्त क्रियान्वयन के लिये विभिन्न वित्तीय तथा विकासगत एजेंसियों में प्रभावी तालमेल होना आवश्यक हैं। उन विकासगत कार्यक्रमों के मामालों में जहां वित्त की आवश्यकता होती है जहां बैंकों को निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप साख के वितरण में अपनी भूमिका का निर्वहन करना होता है, वहीं सरकारी तथा विकासगत एजेंसियों को पर्याप्त आधारिक संरचना सहायता प्रदान करने के उत्तरदायित्व निभाना होता है। वित्तीय सहायता वाले विभिन्न अकाल राहत उपायों में बैंकों, सरकार तथा विकासगत एजेंसियों के उत्तरदायित्व का एक संक्षिप्त खाका नीचे खींचा गया है-

13.1 बैंक की भूमिका (Role of Banks) :

(1) शाखाओं के निष्पादन बजट में शाखावार लक्ष्यों का एकीकरण
(2) अभिचिन्हित उद्देश्यों के लिये लाभार्थियों को ऋण का समय पर वितरण
(3) आकाल स्थिति पर काबू पाने के लिये, गैर कृषि क्रियाकलापों को उचित अधिमान दिया जाये
(4) मानदण्डों के अनुसार फसल ऋण को सावधि ऋण में तथा ऋण का पुन: अनुसूचीकरण किया जाये
(5) उपभोग ऋण प्रदान करना
(6) पानी की टैंकर के लिये वित्त पोषण किया जाये
(7) चारे के डिपो भी वित्त पोषण के लिये तकनीकी रूप से पात्र योजना है
(8) बैंक गांव गोद ले सकते हैं, जहां उचित राहत कार्य अपनाये जा सकते हैं
(9) निर्धारित मानदण्डों के अनुसार वसूली को स्थगित करना
(10) उपभोग ऋण प्रदान करना
(11) समय-समय पर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा इस हेतु दिये गये निर्देशानुसार अन्य कार्य

13.2 सरकारी एजेंसियों की भूमिका (Role of Government Agencies) :

(1) सूखाग्रस्त इलाकों की पहचान करते हुये नोटिफिकेशन जारी करना।
(2) जिला ग्रामीण विकास अभिकरण/सम्बद्ध विभाग/एजेंसी द्वारा आवेदन पत्र प्रायोजित करना।
(3) गुणवत्ता पूर्ण इनपुटों की आपूर्ति, चारा की आपूर्ति, पशुओं की स्वास्थ्य की देखभाल, विपणन के अवसर आदि जैसी आधारिक संरचना सुविधाएं प्रदान करना।
(4) किसानों को प्राथमिकता के आधार पर बिजली के कनेक्शन जारी करना।
(5) ग्रामीण दस्तकारों, शिल्पकारों तथा उद्यमियों की जिला उद्योग केन्द्र द्वारा पहचान करना तथा प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अन्तर्गत प्रशिक्षण के माध्यम से उनके कौशल का विकास करना।
(6) जहां पर मार्ग चट्टानी हैं, वहां विस्फोट परिचालनों की व्यवस्था करना।